पंचम अध्याय

समापन

पंचम अध्याय
समापन

मनुष्य प्रकृति का अभिन्न अंग है। वह समाजप्रिय और बुध्दिमान प्राणी हैं। उसेन अपनी अभिव्यक्ति के लिए साहित्य का निर्माण किया। उसने अपनी अभिव्यक्ति अलग-अलग विधाओं में पेश की है और आज भी उसका प्रयास चल रहा है। प्रत्येक विधा में अपनी विशिष्ट कला होती है। नाटक विधा तो अन्य विधाओं में अपना अलग स्थान प्राप्त कर चुकी है। वह दृश्य, श्रव्य काव्य है। यह विधा चाहे आज सिनेमा (कैमरा) की होड़ में पीछे चली आ रही है, मगर इसकी सजीवता न कैमरा चित्रित कर सकता है और ना ही कोई अन्य विधा, या साधन। फिल्म के चित्र हमारे मानस पटल पर अंकित होने से पहले ही ओझल हो जाते है जब कि नाटक रंगमंच पर देखते वक्त अभिनेता में हम घुल मिल जाते हैं, उसके ही चित्र सदा के लिए हमारे मन पर अंकित हो जाते हैं।

नाटक विधा अन्य विधाओं से अलग हैं, इसका एक ही प्रमाण प्रमुख रूप से देखने को मिलता है कि वह श्रव्य और दृश्य है और अन्य विधाओं में यह देखने को नहीं मिलता। नाटक विधा का विकास तो प्राचीन काल से चला आ रहा है। उसका महत्त्व 'नाट्यशास्त्र' में ही देखने को मिलता है। उसे 'पंचम वेद' कहा गया है। जितनी प्रेरणा नाटक ने प्राचीन संस्कृति से पायी है उतनी अन्य विधाओं ने नहीं। अपनी प्राचीन परंपरा से कुछ लेते हुए नाटक की अपनी यात्रा विकासमान होती गई। और आज वह अपनी चरमसीमा पर है। प्रमुख नाटककारों के योगदान के फलस्वरूप नाटक ने अपना लोकरंजन के साथ यथार्थ उद्देश्य भी सार्थक किया है। भारतेंदु, जयशंकर प्रसाद आदि आधुनिक नाटककार महत्वपूर्ण है जिन्होंने अपने नाटकों में समय की धारा को लेकर भी अपना नया योगदान दिया है। नाटक को रंगमंच देना भारतेंदु का प्रथम प्रयास है। प्रसादजी के नाटक साहित्यिक ज्यादा रहे, रंगमंचीय कम लेकिन उनका भारतीयता के प्रति गौरवगान देखने योग्य है।

प्रसादोत्तर युग में कई महत्वपूर्ण नाटकों की रचना हुई मगर उनमें रंगमंचीयता नहीं के बराबर थी। जगदीशचंद्र माथुर के 'कोणार्क' के निर्माण से हिंदी नाटक को सही दिशा मिली। धर्मवीर भारती का 'अंधायुग' नाटक यात्रा की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। 'राकेश' जैसे व्यक्तित्व का निर्माण से तो हिंदी नाटक को जैसे प्रेरणा की मिली।

राकेशजी ने तीनों नाटकों का निर्माण करके नाटक साहित्य में ही नहीं पूरे विश्वसाहित्य में तहलका मचा दिया। ऐसे व्यक्तित्व का अध्ययन करना खुशनसीबी ही तो हैं। अनेक विद्वानों के मंतव्य को देखकर तो लगता है कि उनके व्यक्तित्व का अध्ययन करना किसी के बस की बात नहीं।

राकेशजी का जन्म परंपरागत आदर्श परिवार में हुआ। राकेशजी को अपने पिता से प्रेरणा मिली । वैसे प्रत्येक व्यक्ति का जीवन महत्वपूर्ण होता है, उतार चढ़ाव प्रत्येक व्यक्ति के जिंदगी में आतें हैं लेकिन उनका डटकर मुकाबला करना और अपने को एक अलग हस्ति बनाना आश्चर्यजनक होता है। राकेश किसी के सामने झुके नहीं। उनकी जिंदगी में कई उतार-चढ़ाव आये, उससे उनके जीवन पर गहरा प्रभाव भी पड़ा। उनकी माँ उनका प्रेरणास्थल रही है। उनके लेखन के बीच कोई नौकरी नहीं आयी और जब भी आयी उन्होंने नौकरी से इस्तीफा दिया।

उनका व्यक्तित्व आकर्षक था। उन्हें झूठी दोस्ती से सख्त नफरत थी। उन्हें कोई बंधन रोक नहीं सका। दुनिया में रहकर दुनियादारी के रस्म-रिवाज उन्होंने नहीं निभाये जो उन्हें गलत लगते थे। उनका संघर्षमय व्यक्तित्व उनके साहित्य में उतर आता है। त्रासदी ही उनके व्यक्तित्व की निशानी बन गयी है। दुनिया के बीच रहकर इस अनूठे विद्रोही ने हर बात कहने की बजाए उसे पहले पूरा किया है और बाद में कहा है। उनका व्यक्तित्व, जिंदगी संघर्षपूर्ण होकर भी उन्होंने साहित्य में जो जगह पा ली है वह अन्यत्र दुर्लभ हैं।

राकेश ऐसे साहित्यकार है जिन्होंने नाटकों की महत्वपूर्ण रचनाएँ प्रदान की फिर भी समकालीन परिवेश के अनुसार उन्होंने अन्य विधाओं में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। राकेश साहित्य स्रष्टा है, उनका अन्य विधाओं का निर्माण उनकी सृजनशक्ति का परिचायक है। कहानियाँ,

बालकहानियाँ, डायरी, कविता आदि विधाओं में अपना योगदान दिया। ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जिसमें इन्होंने अपना योगदान न दिया हो।

नाटकों में 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस' और 'आधे-अधूरे' का निर्माण करके राकेश ने महत्वपूर्ण उपलब्धि दी हैं। 'पैर तले की जमीन' उनकी अधूरी रचना रह गई। बाद में इसे पूरा भी किया गया। सर्वसाधारण रूप से उनके नाटकों में तत्वीय विवेचना हुई है। लेकिन कथानक को लेकर नामकरण तक उनमें नवीनता है। और इसका उत्तरोत्तर विकास होता गया। उनके नाटकों में कथ्य का विस्तार हुआ है, उसमें विविधताएँ भी है। मोहन राकेशजी ने जैसे-जैसे समय बदलता गया, जीवन की मान्यताएँ बदल गयी वैसी ही विचारधारा उन्होंने नाटकों मे प्रदर्शित की। यही उनकी साहित्य के प्रति खासियत है। नाटककार राकेश वस्तुत: जीवन की त्रासदी के ही कलाकार है। आज का जीवन ऐसा है जिसमें सुख पैर फिसलने पर पाँव की सिहरन मात्र है लेकिन दु:ख इतना है कि जिसमें त्रासदी ही मंचित होती है। मल्लिका जो दूध से दुनिया नहलाना चाहती है, सारे संसार का आतिथ्य करना चाहती है, उसके वर्षा के (प्रेम) मेघ अचानक उज्जयिनी की ओर जाते है। जीवन से अतिरिक्त चाह रखनेवाले व्यक्तियों की समस्याएँ, उनकी खोज एक डिब्बे में ही बंद रह जाती है।

मोहन राकेश के पूर्व जो नाटक प्रचलित थे, वे रंगमंचीय कम साहित्यिक ज्यादा थे, लेकिन इन नाटकों में जीवन का यथार्थ है। नाटक को रंगमंचीयता बनाकर अपनी गहन सर्जनात्मकता को प्रस्तुत किया। जीवन वास्तव की आंतरिकता को इन्होंने रंगप्रतीकों के माध्यम से संप्रेषित किया। इनके नाटकों में कथ्य का विस्तार इस तरह हुआ है। 'आषाढ़ का एक दिन' में कालिदास अंतत: न जाने कहाँ चला जाता है। 'लहरों के राजहंस' का नंद न उसे भिक्षु बनने में रूचि है न वह सुंदरी को भूलाना चाहता है और न छोड़कर जाना चाहता है, उसके पास आकर भी उसे निराश होकर लौट जाना पड़ता है। 'आधे-अधूरे' में तो विवशता ही झलकती है। यहाँ आकर मनुष्य की अत्याधुनिक स्थिति नजर आती है। इसका नायक घर लौटने में मजबूर हैं। आज का मानव कहीं ना कहीं अधूरा हैं, अभावग्रस्त है, मजबूर है, न वह आगे जा सकता है और न पीछे लौट सकता है। राकेशजी अपने नाटकों से यही

कथ्य प्रस्तुत करना चाहते हैं। महानगरीय जीवन की घुटन मनुष्य को खाये जा रही है, वह भीड़ में होकर भी अकेला बनता जा रहा है। सचमुच राकेश में वह दृष्टि है, जो किसी अन्य नाटककार में दिखाई नहीं देती।

राकेश के इन नाटकों में सामाजिकता का भी पहलू नजर आता है। 'आषाढ़ का एक दिन' में कई ऐसे पात्र है जो किसी के घर में अनाधिकार प्रवेश कर जाते हैं। निक्षेप, विलोम का मल्लिकाके घर में आना, अपना अधिकार जताना सामाजिकता का पहलू हैं। चाहे इसमें विलोम और निक्षेप का आना अलग अर्थ प्रस्तुत करता हो। कालिदास का मातृगुप्त बनकर लौटना सारे प्रांत के लिए विजयोत्सव के बराबर है। यहाँ भी सामाजिकता झलकती है। 'आधे अधूरे' में समाज के कितने ही लोगों से 'आधे-अधूरे' के परिवार से नाता है। चाहे वह समाज उनके लिए कोई मायने भी नहीं रखता होगा फिर भी उन्हें समाज से जुड़ना पड़ता है। किन्नी को स्कूल जाना पड़ता है, अशोक सुवर्णा नाम की लड़की के पीछे पडा रहता है। सावित्री तो पूर्ण पुरूष की खोज में रहती है।

राकेश के नाटकों की विशेषता है कि इसके पात्र अपने ही लोगों के सामने कितनी ही नफरत करते हैं लेकिन वह उनसे अलग नहीं रह पाते हैं। 'आषाढ़ का एक दिन' की अंबिका मल्लिका को कोसती रहती है लेकिन उसकी भावनाओं में शरीक होती है। लहरों के राजहंस के नंद और सुंदरी भी इसी तरह के पात्र हैं। जब सुंदरी सोती है तो नंद उसके बारे में कितनी ही बातें करता है और जब नंद चला जाता है तो सुंदरी सिसक उठती है। 'आधे अधूरे' में पूर्ण पुरूष की खोज लगी सावित्री अंत में हारती है और घर में ही लौटती हैं। बड़ी लड़की किन्नी जानती है कि उसका पति माँ का प्रेमी बन चुका है। फिर भी वह कुछ नहीं कहती। किन्नी अपने लोगों का अपमान सहज नहीं कर पाती। महेंद्रनाथ सावित्री और परिवार से प्यार होने के कारण बीमार होते हुए भी वह लौट आता है। राकेश के नाटकों की यह विशेषता बन गयी है। चाहे कितनी ही पाश्चात्य परंपरा हो या संस्कृति बिगड़ जाए, अत्याधुनिकता सर पर सवार हो फिर भी अपने लोगों को कोई छोड़ नहीं सकता। यही सत्य इनके नाटकों में झलकता हैं।

आधुनिक समाज में अर्थ का विशेष महत्व होता है। मल्लिका को अपना घर गुजारा करने के लिए वारांगना बनना पड़ता हैं। 'आधे-अधूरे' में मध्यवर्गीय परिवार के टूटने का भी यही एक कारण है। पुरूष महेंद्रनाथ बहुत दिनों पूर्व व्यापार में घाटा उठा चुका है, इससे घर की सारी आर्थिक व्यवस्था ड़गमगा जाती है। बच्चों की पूरी परवरिश वह नहीं कर पाता। वह बेकारी के कारण तंग आकर घर छोड़कर जाता है। वापस उसे लौटना पड़ता है क्योंकि वह आर्थिक दृष्टि से पत्नी सावित्री पर निर्भर हैं। आजकल स्थिति ही ऐसी है कि घर में कोई भी कमाता हो, निम्न मध्यवर्गीय लोगों की उनकी अपनी स्थिति सहज नहीं रहने देती। सामाजिक संदर्भ के कितने ही पहलू राकेशजी के नाटकों में देखने मिलते हैं।

पारिवारिक बिखराव सामाजिक संदर्भ का एक पहलू है मगर टूटा हुआ। आज मनुष्य जितना बौध्दिक बनता जा रहा है उतनाही वैयक्तिक दिशा हीन। मूल्यों का विघटन होता जा रहा है यह चिंता का विषय है। इस पर भी राकेश ने नजर ड़ाली है। स्त्री-पुरूष संबंधों पर प्रश्नचिहन लगा हुआ है। ऐसे सवालों के जवाब राकेश ही हमसे माँगते हैं।

अभिनय की विशेषताएँ, विविधताएँ राकेश के नाटकों में झलकती है। नाटक के पात्र मंच पर वही बोलते हैं जो नाटककार का मूल उद्देश्य है, ध्येय है। तीनों नाटकों के पात्र सामान्य व्यक्ति नहीं हैं। वे जीवन के किसी न किसी सत्य के पतिरूप है। इनके नाटक ऐतिहासिक हो या समकालीन जीवन का परिवेश प्रस्तुत करनेवाले हो 'प्रतीकात्मकता' की योजना राकेशजी को अन्य नाटककारों से ऊँचे स्थान पर खड़ा कर देती है। प्राचीन इतिहास के संदर्भों को नवीन संदर्भो में प्रस्तुत करना राकेश की विशेषता ही नीं, सृजन दृष्टि की परिचायक है। समकालीनता को भी समग्र जीवन का परिचायक बनाना, उसे किसी भी स्थिति में प्रस्तुत करना राकेशजी की अपनी उपलब्धि है। 'आधे-अधूरे' के पात्र सामान्य व्यक्ति होकर भी किसी भी देश काल में वह अपना प्रतिनिधित्व कायम कर चुके हैं। 'पूरे पन' की खोज सबमें होती हैं। आज और कल भी ऐसी ही स्थिति रहनेवाली है। राकेश के नाटकों में और एक अलगता है कि उनके नाटकों की प्रेम और यौन की दृष्टि बदली हुई है। 'आधे अधूरे' में स्वच्छन्दतावाद का आग्रह है। लेकिन 'आषाढ़ का एक दिन' में प्रेम त्याग के रूप में चित्रित हुआ है, वहाँ भावनाओं का

वरण किया गया है। ऐसा चित्रण कहीं नहीं है। एक तरफ प्रेम का उदात्त स्वरूप, दूसरी तरफ उसी प्रेम में स्वच्छंदतावाद का प्रयास आज के बदले हुए वातावरण की देन है। समकालीनता का पूरा बोध राकेशजी हमें करा देते हैं।

मोहन राकेश के इन नाटकों में से त्रिकोण उभरता है, जिसमें यथार्थ भावना और जीवन-अनुभव है जो एक दूसरे के प्रति लाभदायक नहीं बल्कि त्रासदायक है। इनमें जो चित्रित पात्र हैं उनकी मानसिकता को हमारी मानसिकता में परिवर्तित करने की शक्ति मोहन राकेशजी में है।

एक नाटककार का ऐतिहासिक संदर्भ को लेकर भी वर्तमान स्थिति में रख देना आसान बात नहीं। ऐतिहासिक पात्रों को लेकर उनका द्वंद्व आज के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना राकेशजी की अलग खूबी है। 'आषाढ़ का एक दिन' में कालिदास भावुक ग्रामीण कवि हैं मगर जब वह राज्यकवि का आसन सँभालता है, कश्मीर का शासन सँभालता है तो वह अपना अस्तित्व खो बैठता है। न कवि रहता है और न शासक। एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकती यही आशय राकेश समझाना चाहते हैं। 'लहरों के राजहंस' में सुंदरी और नंद का द्वंद्व आज के आधुनिक मानव का द्वंद है। बौध्दकालीन संस्कृति की कथा का आशय ग्रहण कर आज के आधुनिक मानव मन की हलचल को राकेशजी ने व्यक्त किया है। 'आधे-अधूरे' तो समकालीन परिवेश का पूरा का पूरा चित्र प्रस्तुत करता है। कुलमिलाकर राकेशजी के तीनों नाटक और अन्य विधाओं की उपलब्धियाँ भी नया बोध प्रदान करती है। राकेशजी के नाटक हमें प्रेरणा देते है। उनके नये आयामों की खोज उनके नाटकों में ही मिलती हैं। राकेशजी का साहित्य आईना ही लगता है जिस में हम अपना प्रतिरूप ही देखते हैं। राकेश का सृजन जीवन की यथार्थ स्थितियों का सहज और विश्वसनीय अभिव्यंजन है। उसमें मनुष्य के राग-विराग, आसक्ति-अनासक्ति, स्वीकार-अस्वीकार, ग्रहण और त्याग, जीवन के जटिल संदर्भ, युग त्रासदी और उससे उत्पन्न मन:स्थितियों का यथार्थ, विश्वसनीय और सही अंकन हुआ है। इसीलिए राकेश का साहित्य युग साहित्य हैं।

मनुष्य प्राणी असाधारण हैं। उसने हमेशा से ही अपना विकास चाहा है। उसने अपनी अभिव्यक्ति के लिए अलग-अलग साधनों का उपयोग किया। उसमें महत्वपूर्ण साधन हैं भाषा। हर विधा में भाषा का उपयोग किया जाता है, यूँ कह सकते हैं कि भाषा के बिना किसी विधा का अस्तित्व ही नहीं हो सकता।

नाटक विधा ने हमेशा अपने को तत्कालीन परिस्थितियों से ही विकसित पाया हैं। भाषा उस स्थिति को वर्तमान स्थिति में प्रकट करती है। नाटक और भाषा का अभिन्न संबंध है। भाषा मानव का सृजन करती है, यही बात राकेश के नाटकों में देखने को मिलती है।

राकेश के नाटकों की भाषा मानव के चिंतन को व्यवस्थित रूप देती है। राकेशजी ने गतिशील और बहुआयामी भाषा दी है। नाटकीय शब्द की खोज लगे हुआ इस नाटकाकर ने जब नाटकों का निर्माण किया तो भाषा के नये-नये आयाम खोजे। राकेशजी संस्कृत के विद्वान रह चुके हैं। अगर इन्होंने 'आषाढ़ का एक दिन' का निर्माण संस्कृत भाषा में ही किया होता तो शायद हम वंचित रह जाते। क्योंकि ऐतिहासिक संदर्भ लेते हुए भी, संस्कृत शब्दावली का उपयोग करके भी वर्तमान संदर्भ में प्रस्तुत हुई भाषा का लाभ हम नहीं उठा सकते थे। 'लहरों के राजहंस' की भाषा में बौध्दकालीन संस्कृति भी है लेकिन इसकी भाषा को रंगमंचीय बनाने का यही से सफल प्रयास हमें देखने को मिलता है। 'आधे अधूरे' की भाषा ही ऐसी है जिसके कारण उसे 'मील का पत्थर' कहा जाता है। नयी-नयी नाट्यभाषा की तलाश हमें प्रेरणा देती है। जीवन की जटिलताओं को पूरे सजीव चित्रित भाषा में राकेशजी ने व्यक्त करके हमारे तन-मन को झकझोर ड़ाला है।

राकेशजी ने अनुभव की भाषा प्रदान की हैं। राकेश ऐसे जागरुक नाटककार है जिनका ध्यान नाटक की भाषा से हटा नहीं है। उनकी भाषा में संवेदना, गहरी सांकेतिकता, द्वंद्व, संघर्ष, भावुकता, गतिशीलता, नाटकीय चेतना मौजुद है। जो अन्य नाटककारों मेंदिखाई नहीं देती।

रोमांटिक वातावरण की सृष्टि की अलग देन नाटकों में दिखाई देती है। शारीरिक क्रिया और भाषा का समन्वय उनके नाटकों में दिखाई देता है। उनकी लेखनकला ऐसी है जिसमें अर्थ शब्दों के

बीच से उभरता है। अलग-अलग अनुभवों, अलग-अलग भावों की भाषा नाटकों में प्रस्तुत हैं। प्रत्येक पात्र की अलग-अलग भाषा यहाँ प्रस्तुत है। अर्थात भाषा पात्रानुकूल हैं। रोमांटिक दृष्टि के साथ यथार्थ की भाषा नाटकों में प्रस्तुत हैं। बिंब योजना नाटकों को सार्थक बनाती है।

राकेश ने नाटकों में संवादों की भाषा अलग-अलग रूप में प्रस्तुत की है। पात्रों के वार्तालाप में प्रश्न ही प्रश्न नजर आते हैं जिनका कोई जवाब नहीं मिलता। राकेशजी ने भाषा के ही सहारे हमारे सामने कई सवाल खड़े किये हैं जो हमें झकझोर डालते हैं।

जनसमुदाय के निकट लानेवाली भाषा का निर्माण करके राकेशजी युगीन नाट्यभाषाकार बन चुके है। ल्य नियोजन राकेशजी की विशेष देन है। कितने ही सारे नाटकीय प्रयोग देखने को हमें मिलते है। व्याकरण से परे भी शब्दों का निर्माण किया है लेकिन वह भी अपने अर्थ में संयोजित हैं। उनके व्यंग्यात्मक भाषा के निर्माण से कितने ही सच्चे अर्थ निकलते हैं। लक्षणा एवं व्यंजना की देन भी अपने में सार्थक है। मुहावरों, लोकोक्तियों और सूक्तियों का उपयोग उन्हें युगीन कलाकार के रूप में प्रस्तुत करता है।

राकेश की भाषा की अन्य महत्वपूर्ण विशेषता है प्रतिकात्मक भाषा। राकेशजी ने ऐसे प्रतीकों का निर्माण किया जो आज के भी मानव पर लागू होते हैं। आधुनिक मानव मन के अंतद्वंद्व को संप्रेषित करने के लिए यह प्रतीक अपने आप में सार्थक है। 'लहरों के राजहंस' नाटक तो प्रतीकों का भंडार ही लगता है। प्रतीकों को पात्रों के रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय राकेशजी को ही जाता है।

मध्यवर्गीय जीवन की भाषा 'आधे-अधूरे' में ही देखने को मिलती है। युगीन कलाकार यहाँ सार्थक दिखाई देता है। बोलचाल की भाषा की देन राकेश ने हिंदी नाटक को दी है जो बाद के नाटककारों की प्रेरणा स्थल रही। मौन क्रिया राकेश जी विशेष देन है। 'जो सत्य रूप में हमारे पास है बस वही हमारी कमाई हैं इसके अतिरिक्त आज की होड़ को हम कुछ नहीं कर सकते' ऐसी भाषा प्रस्तुत करनेवाले राकेश ही पहले नाटककार हैं। महानगरों की अजनबीयता यह भाषा हमें सिखला जाती है। वचन वक्रता, एकल शब्दों की लाक्षणिकता भी राकेश की देन हैं। संक्षिप्तता में सबकुछ कह देने की विशेषता राकेश की अपनी अलग ही देन हैं।

समय के अनुसार राकेशजी ने अपने को बदला है यह बात उनकी इन नाटकों की भाषा के निर्माण से ही पता चलती हैं। स्पष्ट रूप से यही देखने को मिलता है कि भाषा के संबंध में राकेशजी का सबसे अलग चिंतन है। नाटकों का एक भी शब्द बनावटी नहीं लगता। भाषा को तराशने, सँभालने, सँवारने का काम राकेशजी ने किया है। भाषा को नया रूप प्रदान करते वक्त उसी स्वाभाविक ताने-बाने में सुरक्षित रखने का प्रयत्न राकेशजी ने किया है। राकेशजी की समकालीन संवेदनना की सूक्ष्म पकड़ और नाट्यभाषा की सही तलाश हिंदी नाटक को एकदम आगे ले जाती है। आपका हर नाटक अपनी भाषा में प्रेरक हैं। नाटक की भाषा कथा, घटनाक्रम, पात्र, द्वंद्व के अनुरूप ही हैं। संक्षेप में विषय और भाषा के बीच नाट्यसुलभ संगति मिलती है।

नाटकीय शब्द की खोज में लगा हुआ यह नाटककार शायद अभी तक कितने ही आयाम प्रस्तुत करता। एक रचनाकार की दृष्टि से उन्होंने हिंदी भाषा की अर्थशक्ति के विस्तार को पहचान लिया था। उनके नाटकों में आये देशी-विदेशी शब्द, अँगरेजी और बोलचाल के कितने ही शब्द और हिंदी का अपना अस्तित्व इसका प्रमाण है। उन्होंने हिंदी को संघर्षशील भाषा माना। हर जीवित भाषा एक संक्रमण की स्थिति में रहती है, उसके जीवित होने का यही प्रमाण है। राकेश भी यही मानते थे। शायद इसीलिए उन्होंने हिंदी भाषा को अपनाकर ही उत्कृष्ट नाट्यकृतियों का निर्माण किया।

नाट्यलेखन एक कला है उसी प्रकार प्रस्तुतीकरण भी एक कला है। राकेश ऐसे पहले नाटककार हैं जिन्होंने रंगमंच को महत्वपूर्ण माना। रंगमंचीय भाषा का निर्माण करने का श्रेय राकेश को ही जाता है। राकेश के पहले और समकालीन नाटककारों ने भी ऐसे ही प्रयास भी किए लेकिन उतने सफल नहीं हुए।

राकेश के नाटकीय प्रयोगों में कम-से-कम मंच सज्जा के इस्तेमाल द्वारा अधिक से अधिक संप्रेषण देखने को मिलता हैं। सीमित मंच सज्जा से खर्च भी कम होता है और नाट्य मंचन अधिक सरल सुलभ होता है। रंगोपकरणों की प्रतीकात्मकता कथ्य में नये आयाम प्रस्तुत करती दिखाई देती हैं। नाटक को श्रव्य-दृश्य काव्य कहा गया है। श्रव्य का संबंध भाषा से है और दृश्य का संबंध रंगमंच से।

राकेशजी ने साहित्यिक ढाँचे को तोड़कर रंगमंचीय दृश्य तत्व को प्रधानता दी है। राकेश रंगमंच को लेकर यही मत प्रस्तुत करते रहें कि निरंतर प्रयोगों से ही रंगमंच अपना स्वयं का रूप ग्रहण कर सकेगा।

प्रत्येक नाटककार का अपने युग के अनुसार सर्जन करना सहज और सरल बात है लेकिन अतीत को वर्तमान रंगमंच पर प्रस्तुत करना आसान नहीं। राकेशजी में यही बात दिखाई देती है। और समकालीनता को भी यथार्थ रूप में राकेशजी ने प्रस्तुत किया है। उनकी मंचीयता परदों से प्रकाश की ओर बढ़ी है यही क्या कम है उनकी रंगमंचीय दृष्टि को प्रमाणित करने के लिए। राकेश की नाट्यभाषा नाटक पर पूरी तरह छायी हुई है।

'आषाढ़ का एक दिन' की भाषा काव्यात्मक धरातल को प्रस्तुत करती है, उसमें ऐतिहासिक संदर्भ के साथ संस्कृत शब्दावली का समावेश है मगर नाटकीय भाषा का समावेश इसमें हुआ है। 'लहरों के राजहंस' की भाषा बौध्दकालीन संस्कृति का समर्थन करती है, साहित्यिकता उसमें मौजुद है। इन दोनों नाटकों की भाषा मानवीय धरातल को प्रस्तुत करती है। 'आधे-अधूरे' की भाषा का निर्वाचन तो राकेशजी की पैनी दृष्टि का परिचायक है। तीनों नाटकों की भाषा में एक-एक शब्द का सही चुनाव हुआ है। राकेशजी का 'नाटकीय शब्द की खोज' का परिणाम यहाँ सफल होते हुए देखने को मिलता है। साथ ही इन नाटकों में साहित्यिक और मनोरंजनमूलक रंगमंच का अस्वीकार दिखाई देता है। रंग-निर्देश राकेश की योग्य खोज का परिणाम है। जिसमें नेपथ्य विधान, दृश्यबंध, अभिनय, वेषभूषा, रूपसज्जा, मंचसज्जा आदि का उचित प्रयोग है। सीमित मंच उपकरण की देन, आर्थिक बचत की देन उनके रंगमंचीयता की विशेष देन है। उनकी भाषा, रंगमंचीयता उनके नाटकों में उत्तरोत्तर विकसित होती दिखाई देती है। उनकी भाषा ने हमारे विवेक को जागृत किया है। हमें नई राह प्रदान की है। नई नाट्यभाषा और रंगमंचीयता के फलस्वरूप उनका नाट्यसाहित्य साहित्यकारा में अपना अटल स्थान ग्रहण कर चुका है जिससे हम अपने को गौरवान्वित पाते हैं।

अखिल प्रकृति की नियति का वैचित्र्य ही है कि जैविक सत्ता का विलय अवश्यंभावी है और उसका भावतत्व धरती की धरोहर है। मोहन राकेश ऐसे ही एक मानवीय सृजनात्मक चेतना है जिनका प्रदेय सदैव स्मरण किया जाएगा। उनका नाटक साहित्य मानवीय चेतना के लिए कोश ग्रंथ बन चुका है। उनका साहित्य हमको जिलाता है इसीलिए उनका स्थान दीपस्तंभ की तरह सदैव दैदीप्यमान रहेगा।